P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6 * ISSUE-5 * (Part-1) January- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

राष्ट्रवाद की परिकल्पना : आर्ष वाङ्मय के आलोक में

अनिता सेनगुप्ता
एसोसिएट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ईश्वर शरण डिग्री कालेज,
इलाहाबाद

सारांश

भारत का समस्त प्राचीन ज्ञान भण्डार संस्कृत भाषा में ही निबद्ध है। वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य है, जहाँ पर सर्वप्रथम राष्ट्रवाद का स्वरूप उद्घोषित किया गया। राष्ट्रवाद को स्पष्ट करने के लिए राष्ट्र शब्द को समझना आवश्यक है। 'राष्ट्र' शब्द दीप्त्यर्थकं 'राज्' धातु से 'सर्वधातुभ्यःष्ट्रन' इस उणादि प्रत्यय के संयोग से बना है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार राष्ट्र का अर्थ है–पशुधान्यहिरण्य संपदाराजते शोभते इति राष्ट्रम्'' अर्थात् पशु धन–धान्य आदि सम्पदाओं से सुशोभित भूमिभाग ही राष्ट्र है।

मुख्य शब्द : राष्ट्रवाद, आर्ष वाङ्मय, सम्प्रदाय

प्रस्तावना

राष्ट्रवाद का तात्पर्य है, 'राष्ट्र को प्रेम करने वाला समूह विशेष।' राजनीतिशास्त्रियों ने राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता को एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। डॉ0 सत्यनारायण दुबे ने राष्ट्रीयता को स्पष्ट करते हुये लिखा है–'जो व्यक्ति, जाति, सम्प्रदाय अथवा प्रदेश के स्वार्थ को प्रमुखता देते हैं, उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव है। इसके विपरीत जो राष्ट्र को सर्वोपरि मानते हैं, वे राष्ट्रवादी हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

इस लेख का उद्देश्य वर्तमान समाज में अत्यन्त प्रासंगिक है। आज राष्ट्र में जिस प्रकार भ्रष्टाचार, धनलोलुप्ता, आतंकवाद, नक्सलवाद, साम्प्रदायिकता का बाहुल्य दृष्टिगोचर हो रहा है और उस पर अवसरवादी घिनौनी राजनीति हो रही है, ऐसे राजनीतिज्ञों एवं सामान्य जनता तक राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद की परिभाषा पहुँचनी चाहिए, जिससे अधिकांश जन अनभिज्ञ है।

राजनीतिशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत की गयी विभिन्न परिभाषाओं में किसी ने जातीय एकता, किसी ने सांस्कृतिक एकता और किसी ने राजनीतिक एकता पर बल दिया है, किन्तु सामान्य रूप से सभी राजनीतिशास्त्रियों ने राष्ट्र के जो प्रमुख तत्व स्वीकार किए हैं, वह हैं– भौगोलिक एकता, जातीय एकता, संस्कृति तथा परम्पराओं की एकता, धार्मिक एकता, सामान्य राजनीतिक आकांक्षायें, सामान्य हिताहित की कल्पनाएं और समान शासन इत्यादि।

इन सभी तत्वों में 'सामान्य राजनीतिक आकांक्षायें' सबसे अधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं, क्योंकि आजकल किसी भी राष्ट्र को अपना राष्ट्रत्व सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक हो गया है, कि इन उपर्युक्त लिखित अन्य तत्वों के साथ राजनीतिक स्वतन्त्रता या राजनीतिक स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा होनी चाहिए। इसके विपरीत जिस मानव समूह में जातीय, धार्मिक सांस्कृतिक एकता विद्यमान है, किन्तु राजनीतिक स्वतंत्रता तथा उसकी इच्छा का अभाव है, वह राष्ट्र नहीं कहला सकता।

संस्कृत साहित्य में वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, रामायण, महाभारत तथा कालिदासादि कवियों की रचनाओं में राष्ट्रवाद की भावना की अभिव्यक्ति हुयी है, किन्तु हमारा विवेच्य विषय– आर्षवाङ्मय के आलोक में है –

वैदिक ऋचाओं में सम्पूर्ण विश्व ही राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया गया है। वसुधैव कुटुम्बकम् की उदात्त भावना से अनुप्राणित वेदों में भौगोलिक भेद से विभक्त किसी भूखण्ड अथवा देश की संकीर्ण सीमा को राष्ट्र की संज्ञा नहीं प्रदान की गयी। तैत्तरीय संहिता में कहा गया है–''प्रजा राष्ट्र है, पशु राष्ट्र है तथा जो कुछ श्रेष्ठ है वह राष्ट्र है–

राष्ट्रं प्रजा राष्ट्रं पशवो राष्ट्रयच्छेष्ट्री भवति।[1]

वेदाभिमत विशाल राष्ट्र का राजा वही हो सकता है जो विश्व की समस्त प्रजा को प्रिय हो। सार्वभौम सम्राट के सुदृढ़ हाथों में सुरक्षित राष्ट्र कभी

भी भ्रष्टाचार के गर्त में नहीं गिरेगा।[2] गुणवान् राजा पर्वत की भांति अचल होकर राष्ट्र को धारण करता है तथा अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान को चरितार्थ करता है–

''राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति।[3]

चतुर्विध संहिताओं में 'राष्ट्र' शब्द का प्रयोग विविध विभक्तियों में हुआ है। ऋग्वेद में राष्ट्र शब्द राष्ट्रम्[4] राष्ट्रस्य[5] राष्ट्री[6] इत्यादि विविध अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यजुर्वेद में भी राष्ट्रदा[7] राष्ट्रम्[8] राष्ट्रे[9] इन अनके अर्थों में प्रयोग प्राप्त होता है।

जब सृष्टिकर्त्ता परमपिता परमात्मा अकेले थे, तब उनका मन नहीं लगता था, तब तपस्या करके उन्होंने प्रजाओं की सृष्टि की :–

''सोऽऐच्छत तपस्पप्यत एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय।।''

उपर्युक्त उपनिषद् वाक्य यह बताता है कि मानव कभी भी अकेला आनंद की प्राप्ति नहीं कर सकता है। सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने के लिए एक सुसंगठित नियम व विचारों का क्रियान्वयन करने वाली संस्था या संगठन की अपेक्षा होती है। वैदिक काल में सभा और समिति को वेदों में प्रजापति की दुहिता की संज्ञा दी गयी है। मानव समूह जब एकत्र होकर रहने लगे तो उस स्थान को ग्राम की संज्ञा दी गयी उसका प्रमुख ''ग्रामणी'' कहा जाता था, जो आज के ''मुखिया'' का समकक्ष पद था। अनेक ग्रामों के समूह प्रमुख को ''क्षेत्राधिपति'' कहा जाता था। क्षेत्राधिपति गण ने मिलकर एक तेजस्वी गुणी व्यक्ति को चुनकर राजसूय यज्ञ में प्रयुक्त जल के द्वारा जब अभिषेक किया तब वह व्यक्ति राजा कहा जाने लगा। राज्याभिषेक के समय राजा अग्नि को साक्षी मानकर राष्ट्ररक्षा, राष्ट्रोन्नति और राष्ट्रवृद्धि की शपथ लेता था। यदि राजा के वंश में योग्य व्यक्ति होता था तभी वह राजा बनता था। राजाओं में भी जो श्रेष्ठ राजा 'वाजपेय यज्ञ' का यजन करता था वह ''साम्राज्याधिपति'' कहलाता था, जिसकी सत्ता तीन या चार राज्य या राजा मानते थे। शतपथ ब्राह्मण में तेजयुक्त पराक्रमी होने के कारण राजा को सविता की संज्ञा दी गयी है।

वेद में ''राष्ट्र'' शब्द का प्रयोग किसी वस्तु विशेष या क्षेत्र के लिए नहीं अपितु राष्ट्र हेतु आवश्यक सभी वस्तुओं के लिए सम्मिलित रूप से किया गया है। यथा–राष्ट्रंवा अश्वमेधः[10], श्रीर्वैराष्ट्रम्[11] सविता राष्ट्रं राष्ट्रपतिः[12] राष्ट्रं हरिणः[13]। यजुर्वेद में राजा के लिए विराट्, सम्राट, स्वराट् आदि पदों का प्रयोग मिलता है।[14]

अथर्ववेद के अनुसार सृष्टि के पूर्व में विराज अर्थात् राजा विहीन स्थिति थी। शनैः शनैः वह विराज गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभा, समिति अझैर आमन्त्रण के स्वरूप को प्राप्त हुआ[15]।

राजा को सोम, वरूण, सूर्य, इन्द्र, सविता और बृहस्पति के सदृश गुणयुक्त होने की कामना वेदों में की गयी है। वैदिककालीन राष्ट्र में राष्ट्रगान के रूप में यह मंत्र गाया जाता था[16]।

''आब्रह्मण ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायता माराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधि महारथो जायताम्। दोग्धी धेनुर्वोढ़ानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयों युवास्थ यजमानस्य वीरो जायताम्।
निकामे निकामे नः पर्जन्यों वर्षतु फलवस्त्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमों नः कल्पताम्।।''

राजा का मुख्य कर्तव्य प्रजा का कल्याणमात्र सिद्ध करना है–

इयं ते राडिति

राज्यमेवास्मिन्नेतद्धात्यथैनमासादयति यन्तासि यमन इति यन्तारमेवैनमेतद्यमनमासां प्रजानां करोति ध्रुवोऽसि वरूण इति ध्रुवमेवैनमेतद्धरूणमस्मिंलोके करोति कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वेति साधवे त्वेत्येवैतदाह।।[17]

राजा ही एकमात्र कर ग्रहण करने का अधिकारी होता है तथा उसे व्याघ्र के समान सर्वत्र पराक्रम दिखाते हुए सबका प्रिय बनना चाहिए–

ध्रुवं ध्रुवेण हविषावसोमं नयामसि।
यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत्
व्याघ्रो अधि वैयाघ्रे विक्रमस्व दिशो महीः।
विशस्त्वा सर्वा वा×छन्त्वापो दिव्याः पयस्वतीः।[18]

इस प्रकार वेदों में ''राष्ट्र'' शब्द का अत्यन्त ही व्यापक महत्व है। जबकि स्मृतियों में राष्ट्र पद का प्रयोगराजा द्वारा रक्षित भूभाग के लिए प्रयुक्त हुआ है। स्मृति काल में क्षत्रिय ही राजा हुआ करते थे। स्मृतिकालीन राष्ट्र उपद्रवयुक्त व दुर्भिक्षादि से ग्रसत जान पड़ते हैं अतएव मनु ने राष्ट्र के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है किः–

''जांगलं शस्य सम्पन्नं आर्यप्रायमनाविलम्।
रम्यमानश्च सामन्तं स्वाजीव्यं देशमा विशेत।।''[19]

राष्ट्ररक्षणपटु राजा सेनापति के हाथों में हस्ति, रथ व पदाति सेना की बागडोर देकर सतर्कतापूर्वक उसका निरीक्षण करता रहें। वह अपराधियों को दण्ड तथा समादरणीय वृद्धों, ब्राह्मणों, विद्वानों व आज्ञापालकों को पुरस्कृत करे। वह राजा प्रजा से षष्ठांश कर के रूप में ग्रहण करें तथा सतर्कतापूर्वक प्रजा का पालन करें। कामन्दक नीतिसार में कहा गया है कि :–

''स्वराष्ट्रे न्यायवृत्तः स्याद् भृशदण्डश्च शत्रुषु।
सृहत्स्वजिह्मः स्निग्धेषु ब्राह्मणेषुक्षमान्वितः।।''[20]

किसी भी लड़ाई को शुरू करने के पूर्व राजा को कोश का निश्चय तथा सचिव के सहयोग से संधि विग्रहादि का निर्णय करे। समय–समय पर राजा प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ भी परामर्श करता रहे। राष्ट्र में जो व्यापारी चोर, धूर्त, तस्कर व शठ यदि राजशासन की उपेक्षा करें तो उन्हें राजा कठोर दण्ड दे, अन्यथा राष्ट्र अशान्त हो जायेगा। राष्ट्र की स्थूल एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिस्थितियों पर नियंत्रण बनाये रखने के लिए राजा विश्वासपात्र गुप्तचरों के द्वारा राष्ट्र के प्रतिपल की खबर रखें तथा सभा समिति के प्रतिवेदनानुसार दण्ड और पुरस्कार दे। राजा साम दाम दण्डादि नीतियों को आश्रय लेकर आठ मास तक प्रजा से विविधि प्रकार के करों का संग्रह करें। मनु (9–305) के अनुसार :–

''अष्टौ मासान् यथादित्यस्तोयं वहति रश्मिभि।

तथा हरेत् करं राष्ट्रन्नित्यमर्कव्रत हि तत्।।''[21]

निष्कर्ष

इस प्रकार वैदिककालीन भारत में ''राष्ट्र'' शब्द एक गर्व का विषय था। उस समय के राजा प्रजापालक व राष्ट्र की उन्नति हेतु सतत चिंतनशील रहते थे। वैदिक राष्ट्रवाद के तत्वों का ज्ञान यदि लोगों तक पहुँचाया जाय तो आज राष्ट्रके अलगाववाद, पृथकतावाद, उग्रवाद आदि कई रोगों से बचा जा सकता है। वैदिक राष्ट्रवाद का संदेश है–

समानी वः आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वः मनः यथा वः सुसहासति।।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *तैत्तरीय संहिता 3.4.8.2*
2. *ऋग्वेद 10/174/1–5*
3. *शतपथ ब्रा0 9.4.1.1*
4. *ऋग्वेद 4/42/1, 7/84/2, 10/109/3, 10/124/4*
5. *ऋग्वेद 10/124/5*
6. *ऋग्वेद 6/4/5, 8/100/10*
7. *यजुर्वेद 10/2–4*
8. *वही 12/11, 20/8*
9. *वही 9/23, 20/10*
10. *श0ब्रा0 13/1/6/3*
11. *श0ब्रा0 6/7/3/7*
12. *वही 11/4/3/14*
13. *वही 13/2/9/8*
14. *राज्ञयसि प्राची दिग् विराडसि दक्षिणा दिक् समुद्रसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिग् अधिपत्न्यसि बृहती दिक्– यजु0 14/13*
15. *यजुर्वेद 6/87/1*
16. *शु0यजु0 22/22*
17. *शतपथ ब्रा0 5/2/1/15*
18. *अथर्ववेद 7/19/1, 4/8/4*
19. *मनु–7/69*
20. *कामन्दक नीतिसार–4/49*
21. *मनुस्मृति 9/305*